Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 18, Issue No. 6, October-2021, ISSN 2230-7540

मीरा की भक्ति का स्वरूप का अध्ययन

Neha Rao*

PhD Scholar, Indian Language Centre, Jawaharlal Nehru University, New Delhi - 110067

सार - ***भक्तिकाल हिंदी कविता का स्वर्णयुग माना जाता है। जिन भक्त कवियों ने इस काल को स्वर्णकाल बनाने में योगदान दिया है उनमें मीराँ का प्रमुख स्थान है। नि: संदेह मीराँबाई भक्ति, संगीत व साहित्य की त्रिवेणी है। राजवंश में जन्म लेनी वाली भक्त शिरोमणी मीराँबाई ने भक्ति का जो सन्देश लोक मानस में विस्तारित किया, वह पदों व भजनों की सरिता के रूप में राष्ट्रीय व राज्य सीमाओं का अतिक्रमण कर सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय लोकजीवन में प्रभावित हो गया है। ऐसी स्थिति में मध्यकाल के सामन्तवादी माहौल में अवतरित भक्त शिरोमणी मीराबाई के जीवनवृत्त एवं भक्ति पर ऐतिहासिक दृष्टि से पुनर्विचार समसामयिक दृष्टिकोण से आवश्यक व युग की महती आवश्यकता है। मीरों की भक्ति भावना का समकालीन सम्प्रदायों से तुलनात्मक विवेचन करते हुये डॉ. कल्याण सिंह शेखावत अपनी रचना "मीराँबाई का जीवन वृत एवं काव्य" में लिखते है कि मीराँ न तो वल्लभ सम्प्रदाय से प्रभावित थी और न निम्बार्क, सखी, हरिदासी और राधास्वामी सम्प्रदाय से। यदि मीराँ की भक्ति पर कोई प्रभाव था, तो श्रीमद् भागवत् का था और यदि कोई-साम्प्रदायिक प्रभाव खोजा जा सकता है, तो वह था दक्षिण के "पांच रात्र तन्त्र" तथा बंगाल के चैतन्य सम्प्रदाय का। यह भी मीराँ की भक्ति और साधना की नवीन देन ही कही जायेगी कि उसने अपने युग के उत्तर भारत में प्रचलित प्रभावपूर्ण भक्ति और साधना को छोड़कर, दक्षिण और बंगाल में प्रचलित भक्ति और साधना को ग्रहण किया।***

कुंजीशब्द – मीराँ, भक्ति, स्वरूप

----------X----------

प्रस्तावना

राजस्थान की पुनीत-धरा का इतिहास वीरता, बलिदान, भक्ति, त्याग, आत्मोत्सर्ग, शक्ति, साहस व देशभक्ति रूपी आदर्श नैतिक एवं मानवीय गुणों से ओत-प्रोत है। पन्नाधाय की स्वामिभक्ति व त्याग, कुंभा का साहित्यिक व शिल्प प्रेम, स्वतन्त्रता प्रेमी प्रताप, भक्ति रत्न मीराँ जैसे व्यक्तित्व इस वीरभूमि राजस्थान के इतिहास के सुनहरी पन्ने है। इन ऐतिहासिक व्यक्तित्वों के बारे में जानने व इनसे जुड़े ऐतिहासिक स्थलों की जानकारी हेतु विश्वभर के लोग इस पावन-धरा में बरबस खींचे चले आते हैं।

इस पुनीत धरा राजस्थान ने कई सन्तों व भक्तों को जन्म दिया है। साथ ही कई सन्तों व भक्तों ने इस मरुधरा को अपनी कार्यस्थली बनाया है। राजस्थान के भक्तों व सन्तों में मीराँबाई का स्थान सर्वोपरि है। मीराँ की भक्ति भावना व उनकी पदावली लोकमानस की अनमोल धरोहर है, जो प्रेरणादायी है।

इस पुनीत धरा राजस्थान ने कई सन्तों व भक्तों को जन्म दिया है। साथ ही कई सन्तों व भक्तों ने इस मरुधरा को अपनी कार्यस्थली बनाया है। राजस्थान के भक्तों व सन्तों में मीराबाई का स्थान सर्वोपरि है। मीराँ की भक्ति भावना व उनकी पदावली लोकमानस की अनमोल धरोहर है, जो प्रेरणादायी है।

मीराँ प्रथम कोटि की भक्त व संत थी, वे बाल्यावस्था से ही भक्ति भावना से ओत-प्रोत थी। मीराँ की भक्ति कान्ता भाव या माधुर्य भाव की भक्ति थी। उन्होंने गिरधर गोपाल को पति मानकर भक्ति की थी। मीराँ रचित पदों में विरह वेदना की व्याकुलता स्पष्ट दर्शित होती है। मीराँ के पदों की सादगी व सरलता उनकी सबसे बड़ी विशेषता है।

भक्ति, शक्ति, त्याग और बलिदान की पुनीत धरा रंगीला राजस्थान अपनी अनूठी सांस्कृतिक विरासतों हेतु जग प्रसिद्ध है। इस पावन धरा का कणकण वीरों के रक्त से रंजित है, जिन्होंने आन बान शान हेतु मातृभूमि की सेवा में आत्मोसर्ग कर दिया। वहीं इस वीरभूमि पर अनेक सन्तों व भक्तों ने भी जन्म लिया, जिनके प्रति आज भी जनमानस नतमस्तक है। उन भक्तों में भक्त शिरोमणि मीराँ का नाम सर्वोपरि है, जिनकी उत्कृष्ट भक्ति ने आज भी सदियाँ बीत जाने के बाद उन्हें लोकमानस ने जीवित रखा है।

www.ignited.in

मीरों को जीवित रखने में इतिहास व साहित्य दोनों स्तरों पर उपेक्षा यी। इसी का परिणाम है कि इतनी सदियां गुजरने के बाद भी इस भक्त कवयित्री के जीवनवृत्त व पदों की प्रामाणिकता विवाद का विषय सुधिजनों के मध्य बने रहे हैं। पाँच सौ बरस के लम्बे कालखण्ड में जनकंठों व सन्तों व भक्तों ने मीराँ को एक सांस्कृतिक विरासत के रूप में जीवित रखा। यही विरासत लम्बे समय तक एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होती रही।

मीराँ की भक्ति भावना व भक्ति का स्वरूप

मीरों की भक्ति भावना के सम्बन्ध डॉ. गोपीनाथ शर्मा के अनुसार "भगवान के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा, रूढ़िगत धर्म, पुस्तकों में प्रतिपादित धर्म तथा धर्मानुष्ठान और रीतिरिवाजों पर आधारित धर्म के लिए एक क्रांति बनकर प्रकट हुई और इस अर्थ में वे नव-युग की अगुवा थी।"

'भक्ति की प्रतिमूर्ति, कृष्ण की अनन्य उपासिका मीराँ के आराध्य 'साँवरिया गिरधर गोपाल थे, जिनकी आराधना मीरा ने पति रूप में की। पति के रूप में इष्ट-देव की आराधना में दाम्पत्य भाव की प्रमुखता रहती है इसलिए मीराँ की भक्ति भावना में दाम्पत्य भाव प्रमुख है। दाम्पत्य भाव को ही कान्ता-भाव या माधुर्यभाव भी कहते हैं।"

मीराँबाई ने अपने प्रभु गिरधर गोपाल की भक्ति पति के रूप में की है। मीराँ ने अपने पदों में इसी रूप में ईश्वर की आराधना व भक्ति की है।

मीराँ संतों व भक्तों में ईश्वर आराधना में लीन प्रमुख नारी संत की श्रेणी में गिनी जाती हैं। मीराँ का यद्यपि आज भौतिक अस्तित्व नहीं है, परन्तु अपने पीछे वे एक समृद्ध भक्ति रचना का साहित्य छोड़ गयी है, जिन्हें उनके द्वारा स्वयं रचा गया व गाया गया था। वस्तुत: मीराँ की पदावली की प्रमुख विशेषता उसकी गेयता ही है। उनके पदों में समस्त सांसारिक बन्धनों व भौतिक सुखसुविधाओं को क्षणभंगुर ही माना गया है। उनकी भक्ति में सदैव ईश्वर के प्रति हेतु पूर्ण सर्मपण का संदेश दिया है। उनकी भक्ति ने भावी सन्तों व भक्तों का न केवल मार्गदर्शन किया बल्कि वे उनके लिए प्रेरणा का स्त्रोत भी बनी। आज समस्त विश्व मीरों के आगे नतमस्तक है, उसका कारण मीरों का गिरधर गोपाल के प्रति पूर्ण सर्मपण, उनकी एकनिष्ठ भक्ति व समर्पित भक्ति साधना ही है। जिन्होंने मीरों को सदैव-सदैव के लिए अमर बना दिया है।

मीरों की भक्ति भावना के औज व प्रभावशीलता के संबंध में प्रसिद्ध इतिहासकार गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के लिखा है कि 'भगवती मीराँ के समकालीन मेड़ता राज्य के परम शत्रु जोधपुर नरेश राव मालदेव भी उनके भक्ति भाव से इतने भयभीत हो गये थे कि मेड़ता विजय के उपरांत जब राव जयमलजी के समस्त राजभवनों को द्वेष से नष्ट करा दिया, तब श्री चतुर्भजजी के देवालय और मीराँबाई की भजनशाला की कोठरी को उन्हें सुरक्षित रखना पड़ा।

भक्त मीराँबाई गिरधर गोपाल की अनन्य उपासिका थी। मीराँ के पदों से ज्ञात होता है कि गिरधर गोपाल ही मीरों के परमोपास्य व सर्वस्व थे। मीराँबाई ने वस्तुत: कृष्णभक्ति का आश्रय लिया था। उनकी भक्ति प्रेमाभक्ति थी। उन्होंने अपना सर्वस्व श्री चरणों में अर्पित कर दिया था। उनकी प्रेमाभक्ति मधुर रस से पूर्णतया आप्लावित थी। भारतीय इतिहास में ऐसी भक्ति अनन्य व बेजोड़ है।

श्रीकृष्ण से प्रेमाभक्ति के रास्ते में उन्होंने किसी की परवाह नहीं की। इस पथ पर यद्यपि उन्हें कई आलोचनाओं का शिकार होना पड़ा परन्तु वे अपने लक्ष्य से विमुख नहीं हुई बल्कि सांवरै की प्राप्ति में निर्लिप्त भाव से डूब गयी व अंत में उसी सांवेर की मुरत में विलिन हो गयी।

मीराँ कृष्ण की भक्ति में प्रेम दीवानी बन गयी है व उसे प्रेम रोग हो गया है। वह कृष्ण भक्ति में अपने घर-परिवार, कुटुम्ब को भूला बैठी है। वह इस बात की परवाह नहीं करती की कृष्ण उनसे प्रेम करते हैं या नहीं, वो तो बस प्रेम दीवानी है। उनका व कृष्ण का प्रेम जल में मछली, दीपक-पतंगा की भाँति है। वह कृष्ण के बिना, देह होते हुये भी देह रहित महसूस करती है।

"नागर नन्दकुमार लाग्यौ थारों नेह।।

मुरली धुन सुण बीसीं, म्हारौ कुण बौ गेह।

पाणी पीर न जाणई, तलफ मीन तजै देह।

दीपक जाणे पीर नी, पतंग जल्याँ जल खेह।

मीराँ रो प्रभु साँवरो, थै बिना देह बिदेह।।"

मीराँ की भक्ति का स्वरूप

नारद भक्ति सूत्र में भक्ति के दो स्वरूप बताए गए है प्रथम प्रेम रूपा भक्ति ओर द्वितीय गौण भक्ति। इन दोनों में से प्रेम रूपा भक्ति को श्रेष्ठ बताया गया है। मीराँ की भक्ति इसी प्रेम रूपा भक्ति के अधिक समीप समझी गई है। इसी प्रकार भक्ति के दो भेद और किये गए हैं- पर और अपरा। इन्हें सघना भेद कहा गया है। इन दोनों में भी पराभक्ति श्रेष्ठ समझी गई हैं क्योंकि साध्य स्वरूप यह भक्ति साध्य लक्ष्य के अतिरिक्त किसी भी

www.ignited.in

साधन की आवश्यकता को स्वीकार नहीं करती। मीराँ भी अपने साध्य श्रीकृष्ण के अतिरिक्त किसी अन्य साधना की अभिलाषा नहीं रखती। अत: मीराँ की भक्ति को पराभक्ति के समान समझा जा सकता है।

वस्तुत: भक्त शिरोमणि मीराबाई की भक्ति प्रेमाभक्ति मानी गयी है। मीराँ के साध्य केवल मात्र कृष्ण है। वे अपने साध्य के प्राप्ति हेतु अन्य किसी साधन का अवलम्बन जरूरी नहीं समझती है, उनके तो साध्य भी सांवरै है तो साधन भी सांवरै है। इस तरह की भक्ति जिसमें साध्य और साधन के मध्य कोई विभेद नहीं रहता, वो भक्ति पराभक्ति की श्रेणी में आती है। इस तरह यदि मीराँबाई की भक्ति के स्वरूप का विश्लेषण किया जावें तो वह प्रेमाभक्ति की कसौटी पर खरी उतरती है।

मीराँबाई ने अपने प्रभु को पति को रूप में भजा है। श्प्रभ गिरधर नागरश् ही मीराँ के सच्चे पति हैं। मीराँ ने अपने प्रभु को सदा इसी रूप में स्मरण, आराधना किया है। अत: मीराँ की भक्ति मार्य भाव की भक्ति कहलाती है।

वस्तुत: मीराँ ने अपने गिरधर गोपाल की आराधना पति रूप में की है। उनकी भक्ति मधुरा भक्ति होने से भक्त ईश्वर को अपने पति के सर्वस्व रूप में देखता है व इसी रूप में प्रभु का स्मरण व आराधना करता है। मीराँ नारी है व गिरधर गोपाल की आराधना प्रभु स्वरूप में करती है। अधिकतर विद्वानों द्वारा मीरों की भक्ति के स्वरूप का निर्धारण प्रेमाभक्ति के रूप में किया है। प्रेमाभक्ति की विशेषता है कि भक्त प्रभु की भक्ति, सेवा, आराधना पति भाव से करता है। मीरों की भक्ति का स्वरूप उनके पदों से भी स्वत: स्पष्ट जिनमें वे गिरधर गोपाल को पति स्वरूप मानती है, उन्हें उलाहने देती थी। अत: मीरों की प्रेमाभक्ति होने से मीराँ गिरधर गोपाल की आराधना पति के स्वरूप में करती है।

भक्ति की प्रेरणा

मीरों की भक्ति भावना को शैशव में ही जन्म देने और उसे सीधे गिरिधर से जोड़ देने में मीराँ के महलों में लगे चतुर्भुज जी के मंदिर के परिवेश की एक विशेष भूमिका थी। इसी के कारण उन्हें किसी गुरु के प्रति समर्पित नहीं होना पड़ा और उनकी भक्ति तथा भावना सम्प्रदायों से मुक्त रही।

मेड़ता का राजपरिवार धार्मिक का था। वे वैष्णव भक्त थे तथा भगवान विष्णु के चारभुजा स्वरूप की पूजा करते थे। मेड़ता को अपनी राजधानी बनाने के बाद परम वैष्णव भक्त राव दूदा ने श्री चारभुजानाथ का मन्दिर बनवाया। जो आज भी मेड़ता नगरी की आस्था व श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ है। आज भी चारभुजानाथ को मेड़तिया राठौड़ अपने कुल देवता के रूप में पूजते हैं व अभिवादन में "जय चारभुजानाथ" का सम्बोधन करते हैं।

मीराँ की भक्ति का मूल्यांकन

गोपीनाथ शर्मा ने "राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास में मीराँ की भक्ति का मूल्यांकन करते हुये उद्धृत किया है कि मीराँ के अवसान को लम्बा समय व्यतीत हो चुका है परन्तु वे हमारे लिए एक समृद्ध भक्ति साहित्य को छोड़ गई है जिन्हें उन्होंने रच रच कर गाया और उसके द्वारा अपना ही नहीं अन्य भक्तों का भी मार्गदर्शन किया। मीरों की अलौकिक दृष्टि में समृद्धि वैभव, भौतिक सुख सुविधा केवल दिखावा है, उनके अनुसार, इन सांसारिक सुखों को त्यागने से ही ईश्वर प्राप्ति संभव है। मीराँ का धर्म भक्ति था जिसमें रूढ़ियों या परम्पराओं के लिए कोई स्थान नहीं था। मीरों द्वारा भक्ति के सरल मार्ग का अनुसरण किया गया जिसमें उन्होंने गायन नृत्य व कृष्ण स्मरण को महत्त्व दिया था।

मीराँ नवयुग की पूरोधा थी। उन्होंने अपनी भक्ति में ज्ञान के स्थान पर भावना पक्ष को अधिक महत्त्व दिया। उन्होंने उच्च सिद्धान्तों व विचारों को सरल भाषा में व्यक्त किया। इसी कारण मीराँ के अनुयायियों व प्रशंसकों में समाज के निम्न से लेकर उच्च वर्ग के लोग शामिल है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. मीराँ की भक्ति का स्वरूप का अध्ययन
2. मीराँ की भक्ति भावना व भक्ति का स्वरूप का अध्ययन

साहित्य की समीक्षा

भगवती उपाध्याय (2013) के अनुसार, मीराँबाई ने श्रीकृष्ण की प्रेम भक्ति का ही आश्रय किया, ग्रहण किया है। वस्तुत: उनकी प्रेमाभक्ति मधुराभक्ति ही है। मधुरा भक्ति में भक्त भगवान् को पति या प्रियतम रूप में ग्रहण करता है। जिस प्रकार एक युवती अपने पति या प्रियतम के प्रति ललक उत्साह और आकर्षण से आसक्त होती है, उसी प्रकार भक्त भी तदनुरूप ही भगवान् के प्रति आकृष्ट होता है। स्त्री-पुरुष के प्रेम का आकर्षण लौकिक होता है; किन्तु प्रेमाभक्ति का आकर्षण अलौकिक होता है। अर्थात् स्वयं ही भगवद् स्वरूप होता है। मीराँ ने श्रीकृष्ण को प्रियतम के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने परमाराध्य श्रीकृष्ण को आजीवन पति माना है। वस्तुत: मीराँ की मधुरा भक्ति उनकी कान्तासक्ति पर आधारित है।

विश्वनाथ त्रिपाठी (2015) के अनुसार, 'मीराँ मध्यकालीन भक्त कवयित्री है। उनकी कविता में भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति हुई है। लेकिन वे मध्यकालीन सामंती व्यवस्था

www.ignited.in

की पीड़ित नारी, भक्त कवयित्री है। इस पीड़ित नारी को भूलकर उनकी कविता को हृदयगंम नहीं किया जा सकता। मध्यकाल का पुरुष कवि भक्त होने के लिए "जाति-पांति, धन, घरम, बड़ाई छोड़ता था तो स्त्री को "लोक लाज, कुल श्रृंखला" तोड़नी पड़ती थी।"

कल्याण सिंह शेखावत (2016) के अनुसार, 'मीराँ की अनन्य भक्ति उनके जीवन की थाती बन गई है। इस भक्ति हेतु मीराँ को कई कष्टों का सामना करना पड़ा परन्तु मीराँ ने कभी भी साहस व आशा का परित्याग नहीं किया। राजपरिवार द्वारा दी गई-प्रताड़ना, आतंक व उपहास के बावजूद मीरों की माधुर्य भक्ति सहज रूप से पल्लवित और पुष्पपित होती रही। अन्ततः विजयश्री मीरों को प्राप्त हुई, उनका सम्मान व भक्ति भाव जग-व्याप्त हो गया। मीराँ तो राणा को भी अपने साथ भवसागर के पार ले जाना चाहती थी, किन्तु श्समझायो समज्यो नहीं सिसोद। मीराँ की भक्ति में बाधाएं उत्पन्न करने वाले इस संसार से विदा ले चुका है व विश्व स्मृति पटल पर उनकी छवि धुंधली हो रही है किन्तु मीराँ के यश का प्रकाश चँह और अपना प्रकाश फैला रहा है।"

नीलिमा सिंह (2017) के अनुसार, "उनकी भक्ति भावना स्वतः स्फूर्त और स्वतः प्रेरित है। भक्ति उनके लिए न साधन है और न साध्य। वह स्वयं भक्तिमय है। श्रीकृष्ण से प्रेम करने के लिए उन्होंने किसी विशेष विचार-पद्धति का अनुगमन नहीं किया है। वह सही अर्थों में एक उन्मुत्त भक्त है। इसीलिए उन्हें उसी तराजू पर नहीं तोला जा सकता है, जिस पर उस युग के अन्य प्रसिद्ध भक्त एक-एक करके तुल चुके हैं।"

अनुसंधान क्रियाविधि

द्वितीयक स्रोत

माध्यमिक डेटा कई संसाधनों से एकत्र किया जाता है जैसे विभिन्न पुस्तकालयों, पुस्तकों, शोध पत्रिकाओं, इंटरनेट, पत्रिका, और समाचार पत्रों में साहित्यिक कॉलम, आधिकारिक वेबसाइट

डेटा विश्लेषण

समकालीन सम्प्रदायों से तुलनात्मक अध्ययन

मीरों के समय सामाजिक परिस्थितियाँ संक्रमणकालीन थी। हिन्दु मुस्लिम संस्कृतियों का संघर्ष, धार्मिक कट्टरता और साम्प्रदायिकता पनप रही थी। लेकिन मीराँ ने साम्प्रदायिकता के क्षुद्र घेरे में घिरी हुई संकुचित मनोवृत्ति को स्वीकार नहीं किया। इसलिए उसने वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियों से सत्संग तो किया, किन्तु उनके सतत् प्रयासों के बावजुद वह श्आचार्य जी महाप्रभुश् की सेविका नहीं हुई। उसने ज्ञानी व योगियों से चर्चा तो की, किन्तु जोगी हो या जुगल ना जाणा, उतर जनम की फांसी, को भी वह नहीं भुली। जीव गोस्वामी के पौरुष को वज्रभाव के नारीत्वश् से तो रंगा, किन्तु स्वयं कृष्ण की दासीश् हुई। उसके मन्दिर के द्वार सबके लिए खुले थे, किन्तु वह किसी सम्प्रदाय विशेष के कठघरे में बन्दिनी नहीं हुई। मीराँ का भक्ति मार्ग साम्प्रदायिक पगडण्डी न होकर स्वतन्त्र राजमार्ग था। उसके विचार अतीत और वर्तमान से सम्बद्ध होकर भी मौलिक थे, परम्परा समर्थित होकर भी पूर्णतः स्वतन्त्र थे। व्यापक होकर भी सर्वथा व्यक्तिनिष्ठ थे।

जिस समय राजस्थान में जांभोजी, जसनाथजी, दादू, लालदास आदि सन्तों द्वारा धार्मिक समन्वय व समाज सुधार सम्बन्धी प्रयास किये जा रहे थे, उसी समय राजस्थान में सगुण भक्ति रस की धारा प्रवाहित हुई, जिसका विशुद्ध स्वरूप हम मीराँ की भक्ति में देखते हैं।

मीरों की भक्ति भावना का समकालीन सम्प्रदायों से तुलनात्मक विवेचन करते हुये डॉ. कल्याण सिंह शेखावत अपनी रचना "मीराँबाई का जीवन वृत एवं काव्य" में लिखते है कि मीराँ न तो वल्लभ सम्प्रदाय से प्रभावित थी और न निम्बार्क, सखी, हरिदासी और राधास्वामी सम्प्रदाय से। यदि मीराँ की भक्ति पर कोई प्रभाव था, तो श्रीमद् भागवत् का था और यदि कोई-साम्प्रदायिक प्रभाव खोजा जा सकता है, तो वह था दक्षिण के "पांच रात्र तन्त्र" तथा बंगाल के चैतन्य सम्प्रदाय का। यह भी मीराँ की भक्ति और साधना की नवीन देन ही कही जायेगी कि उसने अपने युग के उत्तर भारत में प्रचलित प्रभावपूर्ण भक्ति और साधना को छोड़कर, दक्षिण और बंगाल में प्रचलित भक्ति और साधना को ग्रहण किया। भक्ति और साधना के क्षेत्र में, मीराँ का यह कदम क्रांन्तिकारी ही कहा जायेगा क्योंकि उत्तर भारत के प्रायः सभी वैष्णव भक्ति सम्प्रदाय, इस बात के लिए पूर्ण प्रयत्नशील थे कि "येन-केन प्रकारेण" मीरों को अपने सम्प्रदाय विशेष में सम्मिलित कर लिया जाय। किन्तु अनेक प्रयत्नों के पश्चात् भी मीराँ ने उत्तर भारत के वैष्णव सम्प्रदायों से न दीक्षा ग्रहण की, न साधना पद्धति और न गुरू ही।

डॉ. पेमाराम के अनुसार, ष्जिस समय राजस्थान में जांभोजी, जसनाथजी, दादू, लालदास आदि सन्तों द्वारा धार्मिक समन्वय व समाज सुधार सम्बन्धी प्रयास किये जा रहे थे, उसी समय राजस्थान में सगुण भक्ति रस की धारा प्रवाहित हुई, जिसका विशुद्ध स्वरूप हम मीराँ की भक्ति में देखते है।

www.ignited.in

निर्गुण सम्प्रदाय और मीरा

मीराँ की भक्ति और निर्गुण सम्प्रदाय की तुलनात्मक विवेचना करते हुये डॉ. कल्याण सिंह शेखावत कहते हैं कि मीराँ के प्रभु, धार्मिक आस्था तथा उपासना भक्ति निर्गुण सम्प्रदाय से मेल नही खाती। मीराँ के प्रभु सगुण साकार, दिव्य, अवतारी और पूर्ण परमात्मा है जबकि निर्गुणी निरंजन, अनाम और विराट है। वह मन वाणी और चक्षु से अगोचर है। निर्गुणी अवतारवाद में आस्था नही रखते है। मूर्तिपूजा , उपासना के निर्गणी विरोधी है, जबकि मीरों के प्रभ समय समय पर अवतार लेते है दुष्टों का दहन करते है, मीराँ उनकी मूर्तिपूजा में आस्था रखती है। नितनेम और चरणामृत जैसे बाह्यडंबर करती है। धूपदीप से पूजन करती है। मीराँ अपने प्रभु के लीलाधामों की यात्राओं को महत्व देती है, जबकि निर्गुण सम्प्रदाय के लिये इनका कोई महत्व नही है। निर्गुण ब्रह्म अजन्मा, अमूर्त तथा अज्ञेय है किन्तु मीराँ के आराध्य जन्म लेते है, इस धरती पर लीला करते है। मीराँ पूर्व जन्म और भाग्यवादिता को मानती है जबकि निर्गुण सम्प्रदाय पूर्व जन्म को नहीं मानता।

इस प्रकार विभिन्न सम्प्रदायों के, मीराँ भक्ति भावना से तुलनात्मक अध्ययन से यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि उन्होंने किसी भी सम्प्रदाय विशेष का अवलम्बन नहीं। उनकी भक्ति में विभिन्न सम्प्रदायों की विशेषताएं होकर भी, वे किसी मत की अनुगामी नहीं बनी। उनकी भक्ति एक स्वतन्त्र राजपथ जो सम्प्रदायवाद के बंधनों से पूर्णतया विमुक्त था। उन्होंने सम्प्रदाय विहिन भक्ति की प्रेरणा दी थी।

वस्तुत: मीराँ की भक्ति भावना में कुछ ऐसे विशेष तत्वों का सामंजस्य था, जिसके कारण विभिन्न सम्प्रदायों ने उन्हें अपने-अपने सम्प्रदायों में शामिल करने का प्रयास किया। परन्तु मीराँ ने किसी भी सम्प्रदाय से दीक्षा ग्रहण नहीं की थी। विभिन्न भक्ति तत्वों के आधार पर मीराँ की भक्ति में अनेक सम्प्रदायों का प्रभाव बताया जाता है। मीराँ की भक्ति भावना में सगुण व निर्गुण भक्ति दोनों की विशेषताएं पायी जाती है। परन्तु उनकी विचारधारा सगुण भक्ति के अधिक निकट मानी जाती है।

निष्कर्ष

मीरों की प्रासंगिकता इसी तथ्य से जाहिर है कि वह मानवजाति की उन्नति हेतु पथ प्रदर्शक का काम करती है। “मीराँ संबंधी अध्ययन, अनुशीलन, उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व अधावधि आमजन व विद्वजनों हेतु प्रेरणा का स्तोत्र है। वर्तमान में उनकी प्रासंगिकता व महत्त्व इस बात का प्रमाण है कि समय के साथ मानवीय दृष्टिकोण में परिवर्तन होता है व वर्षों से भुला दिये जाने वाले व्यक्तित्व पुन: ऐतिहासिक पटल पर अवतरित होते हैं। इस दृष्टि से मीराँ स्वयं एक प्रभावी हस्ताक्षर है। मीराँबाई वर्तमान में भारत की सीमाओं को लाँघकर अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व बन गयी है। मीराँबाई राजस्थान का ही नहीं, भारतदेश का गौरव है। मरुभूमि यह पावन गंगा बहते हुये, अपने जीवन को सार्थक करते हुये अन्तत: द्वारका में अनन्त समुद्र में विलिन हो गयी थी। मीराँबाई भारतीय जनमानस में आस्था व श्रदधा की प्रतीक है। आज सम्पूर्ण विश्व उनके जीवन, व्यक्तित्व व भक्ति के बारे में जानकारी चाहता है। मीराँबाई के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का नारी सशक्तीकरण, सामाजिक, सांस्कृतिक राष्ट्रीय योगदान पर चिंतन मनन इस शोध प्रबन्ध की आधारशिला है। यह शोध उसी जिज्ञासा को मिटाने का एक छोटा सा प्रयास है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भगवती उपाध्याय (2013) मध्यकालीन भारत, प्रयाग प्रकाशन इलाहबाद, 2010-11.
2. विश्वनाथ त्रिपाठी (2015) मेवाड़ राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, महाराणा मेवाड़ हिस्टोरिकल पब्लिकेशन, ट्रस्ट, 2007
3. कल्याण सिंह शेखावत (2016) मेवाड़ का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, 1986
4. नीलिमा सिंह (2017) मेवाड़ के राजाओं की राणियों, कुंवरों और कुंवरियों का हाल (सं. देवीलाल पालीवाल) साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, 1984
5. कालुराम शर्मा (1987) राजस्थान का इतिहास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1987
6. कालूराम शर्मा एवं प्रकाश व्यास (सं.) (2004) राजस्थान के इतिहास की रूपरेखा, पंचशील प्रकाशन
7. के. सी. श्रीवास्तव (2007) प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, युनाईटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, ग्याहरवा संस्करण
8. हरिशचन्द्र वर्मा (सं.) (1987) मध्यकालीन भारत, खण्ड प्रथम, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, तृतीय संस्करण
9. हीरालाल माहेश्वरी (1980) हिस्ट्री ऑफ राजस्थान लिटरेचर, साहित्य अकादमी

10. हरविलास शारदा: महाराणा सांगा, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर

11. हकम सिंह भाटी (1986) राजस्थान के मेडतिया राठौड़ (1458-1707 ई.), राजस्थानी ग्रन्यागार, जोधपुर

12. हुकम चन्द जैन एवं नारायणलाल माली (सं.) (2016) राजस्थान का इतिहास, कला, संस्कृति, साहित्य, परम्परा एवं विरासत, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर.

Corresponding Author

Neha Rao*

PhD Scholar, Indian Language Centre, Jawaharlal Nehru University, New Delhi - 110067